नियमसार, १५२ गाथा की टीका। अधिकार आवश्यक का है। परम आवश्यक- अवश्य करने का क्या? आत्मा को अवश्य करने का क्या? अवश्य करने का यह कि आनन्दस्वरूप आत्मा में लीन होना, यह करनेयोग्य यह है। बाकी सब बातें... आवश्यक -अवश्य उसे अवश्य करने योग्य हो तो वह चिदानन्द परमपारिणामिक स्वभावभाव अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है, उसमें दृष्टि करके लीन होना। जानपना कम-ज्यादा हो, उसकी विशेष बात नहीं। इसलिए कहते हैं कि **यहाँ परम वीतरागचारित्र में...** व्यवहारचारित्र तो राग का कारण है। इसलिए उसकी तो बात नहीं ली। व्यवहार जो क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत वह तो राग है। यहाँ तो परम वीतरागचारित्र। आहाहा! स्वरूप आनन्द, ज्ञान और शान्ति से भरपूर भगवान आत्मा है, उसमें रमना। अनुभव दृष्टि पहले की हो, तब फिर उसमें रमना, लीन होना। वह **चारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है।** आहाहा!

जिसने ऐहिक व्यापार (सांसारिक कार्य) छोड़ दिया है... बाहर का व्यापार अर्थात् बाहर की क्रियाओं से लक्ष्य छोड़ दिया है। यह बाहर की क्रिया छोड़ दी है। आहाहा! **ऐसा जो साक्षात् अपुनर्भव का (मोक्ष का) अभिलाषी महामुमुक्षु...** क्षायिक की बात है न? **सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से...** पाँचों इन्द्रियों का व्यापार छूट गया। इसके बिना चारित्र होता नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी पाँच इन्द्रिय का व्यापार छूटकर अन्तर्दृष्टि-अनुभव हो, तदुपरान्त पाँच इन्द्रिय की ओर का झुकाव है, वह भी छूटकर अन्तर में रमणता हो, इसका नाम चारित्र है। आहाहा!

सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा... पाँचों इन्द्रियों का, मन का व्यापार छोड़ा है। आहाहा! **निश्चयप्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है...** जरा सूक्ष्म बात है। निश्चयप्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान अर्थात् आत्मा आनन्द, ज्ञान और वीतरागमूर्ति है, ऐसा जो आत्मदल वीतरागी, उसमें स्थिरतारूपी सत् क्रिया है। वह क्रिया। वह क्रिया मोक्ष का कारण है। बाहर के क्रियाकाण्ड जो हैं, वे कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! **प्रतिक्रमणादि...** सब लिया है न? प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना आदि। **सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है...** यह सत्क्रिया। राग में रहना, वह असत्क्रिया है। आहाहा! आदि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित। यह सत्क्रिया। राग में रहना, वह असत्क्रिया है। आहाहा! अशुभराग तो असत् है परन्तु शुभराग भी असत् है। आहाहा! सत्क्रिया को करता हुआ। यहाँ **करता हुआ स्थित है...** कहा है। सत्क्रिया को करता है, ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा!

आनन्दस्वरूप ज्ञायकभाव त्रिकाली परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य धातु। निर्मलानन्द पूर्ण परमात्मा ही आत्मा है। उस आत्मस्वरूप-परमात्मस्वरूप में स्थिर होना, वह सत्क्रिया है। उसमें स्थिर होना, वह सत्क्रिया है। आहाहा! यह पंचम काल में ऐसे काल में ऐसी क्रिया... मार्ग तो यह है। पाँचवाँ काल हो या चौथा काल हो। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति प्रज्ञाब्रह्म। वास्तव में तो वह त्रिकाली चारित्र की मूर्ति है। वह त्रिकाली चारित्र मूर्ति है, उसमें पर्याय में चारित्र करना। ज्ञान त्रिकाली है, उसमें एकाग्र होना, वह ज्ञान। दर्शन त्रिकाली है, उसमें एकाग्र होना, वह श्रद्धा। चारित्र त्रिकाली अकषायभाव में स्थिर होना, वह चारित्र है। ऐसी बात है। यहाँ तो बाहर से मान बैठे, यह क्रिया और यह किया और यह किया। आहाहा!

प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है... अन्तरात्मा में-अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर मस्त हो गया है। आहाहा! उसे यहाँ चारित्र कहते हैं। महाव्रत के परिणाम और यह सब क्रियाकाण्ड, वह चारित्र नहीं है। वह सब अचारित्र है, संसार है। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो कुछ व्रत पाले और यह किया... यह किया (तो हो गया) चारित्र। चारित्र की व्याख्या कठिन है। अन्दर चारित्र अकषाय नाम का त्रिकाली गुण है, उसमें एकाग्र होना। अकेले गुण के लक्ष्य में भिन्न करके नहीं। अभेद स्वरूप में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द (आदि) अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण में एक साथ दृष्टि में अनुभवसहित अन्दर स्थिरता होना, उसका नाम सत्क्रिया अर्थात् चारित्र है। यह चारित्र की व्याख्या! यह तो एकान्त (लगता है)। चारित्र कभी सुना न हो। यह तो महाव्रत पालन किये, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, इसलिए चारित्र (हो गया)। वह चारित्र-फारित्र नहीं है। आहाहा! जिसने पाँचों ही इन्द्रियों का व्यापार छोड़ा है और अनीन्द्रिय का आत्मा में अन्दर लीनता का व्यापार किया है, उसे यहाँ चारित्र कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है (अर्थात् निरन्तर करता है),... आहाहा! जैसे निरन्तर आत्मा निरन्तर है, उसके गुण भी निरन्तर है। उसमें स्थिरता भी निरन्तर करे, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! अभी तो ऐसी चारित्र की व्याख्या सुनना कठिन पड़ती है। चारित्र तो है कहाँ? आहाहा! **निरन्तर करता है,...** स्वरूप में प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना। दृष्टिस्वरूप की ओर होने से उसके सन्मुख में लीनता की स्थिरता को यहाँ चारित्र नित्य करता है, यह सत्क्रिया। उसे सत्क्रिया कहा जाता है। आहाहा! देखो! आया या नहीं? सत्क्रिया है या नहीं? यही बात की थी। (संवत्) १९९० के वर्ष में। वे कहे 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष।' शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत की क्रिया, यह दो (अर्थात्) मोक्ष। कहा, दोनों मिथ्या बात है। गुलाबचन्दजी, रतनचन्दजी के गुरु। तब 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष।' कहा है न? कहा, ज्ञान वह आत्मज्ञान। शास्त्रज्ञान भी नहीं। शास्त्रज्ञान, वह विकल्प है। आहाहा!

आत्मा का ज्ञान अन्दर आनन्दस्वरूप का भान, निर्विकल्प आनन्द की श्रद्धा और ज्ञान उसमें-स्वरूप में स्थिर होना, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। यह क्रिया, यह

सत्क्रिया है। आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान और अन्दर स्थिर होना, वह सत्क्रिया, यह ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष। शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत की लौकिक क्रिया, वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! शास्त्रज्ञान अनन्त बार किया। ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ा है। आहाहा! आत्मज्ञान और आत्मचारित्र सूक्ष्म बात है।

वह परम तपोधन... यह तपश्चर्या है। आनन्दस्वरूप में लीनता, इसका नाम तपोधन। उसे तपरूपी धन है। अज्ञानी को धूल का धन है। पैसे की धूल। ज्ञानी को अन्तर आनन्द में आनन्द का अनुभव, ज्ञान की एकाग्रता, शान्ति की व्यक्त प्रगटता, वीतरागता का अनुभव, वह उसका धन है, वह उसका वैभव है। **वह परम तपोधन उस कारण से निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण परम वीतराग-चारित्र में स्थित है...** आहाहा! निजस्वरूप त्रिकाली जो आनन्द सनातन सत्य त्रिकाली ध्रुव, उसके स्वरूप का उसमें विश्रान्ति लक्षण। उसमें स्थिर होता है, विश्रान्ति लेता है। आहाहा! **निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण परम वीतराग-चारित्र में स्थित है...** निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण। आहाहा! निज आनन्दस्वरूप, उसमें विश्रान्ति लक्षण। वहाँ आसन लगाकर स्थिर हो जाना, वह विश्रान्ति लक्षण। **परम वीतराग-चारित्र में स्थित है...** आहाहा!

(अर्थात् वह परम श्रमण,...) परम साधु चारित्रवन्त **(निश्चयप्रतिक्रमणादि निश्चयचारित्र में स्थित होने के कारण, जिसका लक्षण निज स्वरूप में विश्रान्ति है,...)** आहाहा! कहते हैं कि वह क्रिया कैसी? उस क्रिया को क्या कहना? सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, संवर, निर्जरा उस क्रिया को कहना क्या? कि वह निजस्वरूप में विश्रान्ति है। आहाहा! घीया। भक्ति-वक्ति, पूजा और मन्दिर बनावे, उससे कुछ कल्याण नहीं, ऐसा कहते हैं। आता है, शुभभाव आता है, होता अवश्य है परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! उसका निषेध है, वह भाव आता अवश्य है। वीतराग पूजा, दर्शन (का भाव आता है) परन्तु वह अशुभ से बचने मात्र आता है परन्तु वह स्वयं धर्म और संवर-निर्जरा नहीं है। आहाहा! वह धर्म नहीं है। चाहे जैसे लाख-दो लाख (खर्च कर डाले) यह कहा न वहाँ अफ्रीका में? बाईस लाख का मन्दिर बनानेवाले हैं। पहले पन्द्रह लाख का बनानेवाले थे परन्तु हम वहाँ गये, फिर साठ लाख इकट्ठे किये। साठ लाख! अफ्रीका, नैरोबी, बाईस लाख का तो मन्दिर बनानेवाले हैं। उसके प्रमाण यह सब करेंगे

न शोभा ? कहा, धर्म नहीं है। ध्यान रखना। इस शुभभाव में ऐसा निमित्त की ओर लक्ष्य जाता है। आहाहा! साठ लाख इकट्ठे किये। साठ लाख क्या, पाँच करोड़ करे न, साठ करोड़ करे न, उसमें धर्म नहीं है। उसे खर्च करने से धर्म होगा (यह बात नहीं है)। शान्तिभाई! पैसा खर्च करने से धर्म नहीं होगा ?

मुमुक्षु : पहले तो माना था, अब तो नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ कहते हैं। **निजस्वरूपविश्रान्ति...** आहाहा! **(निश्चयप्रतिक्रमणादि निश्चयचारित्र में स्थित होने के कारण, जिसका लक्षण निज स्वरूप में विश्रान्ति है,...)** आहाहा! संसार का पुण्य और पाप की थकान जहाँ उतर जाए। पुण्य और शुभ-अशुभभाव दोनों थकान है। दोनो बन्धन और दोनों जहर है। अमृत सागर का भरपूर भगवान, उसमें विश्रान्ति लेना। आहाहा। वहाँ बैठना, बैठक का स्थान करना, वह विश्रान्ति। आहाहा! **(निज स्वरूप में विश्रान्ति है,...)** आहाहा! कहाँ देह से पार, वाणी से पार, दया, दान के विकल्प से, राग से पार। मैं चैतन्य हूँ और अखण्ड हूँ, ऐसा जो विकल्प है, उससे भी पार। आहाहा!

रात्रि (चर्चा) में कहा था न ? मैं ज्ञायक हूँ, अखण्ड शुद्ध हूँ, यह भी एक विकल्प है, राग है। आहाहा! कठिन काम है तथा एक परमात्मास्वरूप हूँ, उसमें अन्तरात्मा और बहिरात्मा दो पर्याय है। यह विकल्प-राग है। एक द्रव्य में तीन भेद डालकर खड़े रहना वह राग है, धर्म नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन। द्रव्य जो त्रिकाली वस्तु; गुण उसकी शक्ति-स्वभाव, सत्त्व, सत् का सत्त्व और उसमें एकाग्रता, ऐसे लक्ष्य में तीन भेद डालना, वह भी एक राग है। आहाहा! वह भी धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसा तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमात्मा की ओर लक्ष्य जाना, वह भी धर्म नहीं है; वह शुभराग है, पुण्य है। होता है परन्तु धर्म नहीं है।

(निज स्वरूप में विश्रान्ति है,...) आहाहा! महासिद्धान्त यह है। निजस्वरूप चिदानन्द अखण्ड ध्रुव चैतन्य रत्नाकर अखण्ड आनन्दकन्द में विश्रान्ति है। **(ऐसे परमवीतरागचारित्र में स्थित है)**। उस वीतराग परमचारित्र में स्थित है। आहाहा! अकेला चारित्र नहीं लिया। वीतरागचारित्र और परमवीतरागचारित्र। आहाहा! इतने विशेषण प्रयोग किये हैं। **(निज स्वरूप में विश्रान्ति है,...)** बाहर की पूरी दुनिया भूल जाता है। वीतराग

के कहे हुए शास्त्र-बास्त्र के कथन भूल जाता है। आहाहा! और एक भगवान को याद करके... अपना भगवान, हों! यह। उसमें विश्रान्ति लेता है, वही **(परमवीतरागचारित्र में स्थित है)**। आहाहा! ऐसे परम वीतरागचारित्र में स्थित है। आहाहा! यह तो सुनने को मिलना मुश्किल, सुना न हो। आहाहा! और कब सुने तथा कब करे ?

श्लोक-२६२

[अब इस १५२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

आत्मा तिष्ठत्यतुलमहिमा नष्टदृक्शीलमोहो,
यः सन्सारोद्भवसुखकरं कर्म मुक्त्वा विमुक्तेः।
मूले शीले मल-विरहिते सोऽय-माचारराशिः,
तं वन्देऽहं समरससुधासिन्धु-राकाशशाङ्कम्।।२६२।।

(वीरछन्द)

जिसके नष्ट हुए हैं दर्शनमोह और ये चारित्रमोह।
संसार जनित सुख के कारण उन कर्मों को यह आत्मा छोड़॥
मुक्तिमूल निर्मल चारित में सुस्थित है वह चारित्र पुञ्ज।
वन्दन समरस-सुधा-समुद्र उछलने को जो पूरणचन्द्र॥२६२॥

[श्लोकार्थः] दर्शनमोह और चारित्रमोह जिसके नष्ट हुए हैं, ऐसा जो अतुल महिमावाला आत्मा संसारजनित सुख के कारणभूत कर्म को छोड़कर मुक्ति का मूल, ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है, वह आत्मा चारित्र का पुंज है। समरसरूपी सुधा के सागर को उछालने में पूर्ण चन्द्र समान उस आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ॥२६२॥

श्लोक - २६२ पर प्रवचन

[अब इस १५२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

आत्मा तिष्ठत्यतुलमहिमा नष्टदृक्शीलमोहो,
यः सन्सारोद्भवसुखकरं कर्म मुक्त्वा विमुक्तेः।
मूले शीले मल-विरहिते सोऽय-माचारराशिः,
तं वन्देऽहं समरससुधासिन्धु-राकाशशाङ्कम् ।।२६२।।

श्लोकार्थः आहाहा! **दर्शनमोह और चारित्रमोह जिसके नष्ट हुए हैं...** चारित्र किसे होता है?—कि जिसके पहले दर्शनमोह नष्ट हुआ है। आहाहा! आत्मा के आनन्दस्वरूप का जिसे अनुभव हुआ हो, उसके दर्शनमोह का नाश हुआ है क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। सब गुणों की अपेक्षा आनन्द का स्वाद और आनन्द का अनुभव, यह कोई अलग प्रकार है। यह... यह... झगड़ा ऐसा। आहाहा! जिसके दर्शनमोह अर्थात्? आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, ऐसा अनुभव, इससे विरुद्ध जो दर्शनमोह, उसका जिसके नाश हुआ है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। आहाहा! वह परमात्मा का धाम है, वह परमात्मा की जाति है, उसका जो अनुभव हो, उसका नाम समकित। उसका नाम दर्शनमोह का नाश (हुआ कहलाता है) और उसमें फिर स्थिरता होना... आहाहा! उसका नाम चारित्र है।

वह **दर्शनमोह और चारित्रमोह जिसके नष्ट हुए हैं, ऐसा जो अतुल महिमावाला आत्मा...** आहाहा! जिसकी तुलना न की जा सके, प्रभु! आहाहा! इस आत्मा की जाति की किसके साथ तुलना करना? किसकी उपमा देकर इसे बताना? आहाहा! किसका दृष्टान्त देकर इसे समझाना। आहाहा! यह तो अतुल महिमावाला आत्मा है। जिसकी तुलना नहीं, जिसकी उपमा नहीं। उसकी उपमा उसे है। ऐसा जो वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर... आहाहा! वह वीतराग स्वभाव की खान है। **ऐसा जो अतुल महिमावाला आत्मा...** आहाहा! **संसारजनित सुख के कारणभूत कर्म को छोड़कर...** संसार से उत्पन्न हुआ सुख। आहाहा! यह देव के सुख और यह धूल के-पैसेवाले के सुख... आहाहा!

मुमुक्षु : उसे सुख तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने माना है न! वह मानता है तो कहते हैं कि वह सुख है। वह मानता है न? वह मानता है तो कहे सुख। मानता है न वह? लड़का लकड़ी का घोड़ा लेकर रास्ते में बैठा हो और उसका पिता आया हो तो उसे ऐसा कहता है कि ऐ! घोड़ा आगे रख, चल अन्दर। उसका पिता भी लकड़ी को घोड़ा कहता है। उसी प्रकार यह वीतराग मुनि भी ऐसा कहते हैं कि तुझे जो सुख की कल्पना हुई, प्रभु! उसे मैं भी तेरी भाषा में सुख कहता हूँ। आहाहा! है?

आत्मा संसारजनित सुख... संसारजनित सुख अर्थात् कि दुःख। आहाहा! लोग तो मानते हैं न? पैसेवाले हों, अनुकूलता हो... आहाहा! कहा न? वह नैरोबी में तो लोग लाखों रुपयेवाले तो... दिखायी दे। दस लाख और बीस लाख और पच्चीस लाख, पचास लाख ऐसे ढ़ेर, नैरोबी अभी गये थे न? छब्बीस दिन रहे। साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। करोड़पति वहाँ गाँव में। पन्द्रह तो अरबपति हैं। पाँच, सात, दस लाख की तो बातें करना नहीं। ऐसे तो कितने ही पड़े हैं, कहते हैं। आहाहा! सब ऐसा मानते हैं कि हम सुखी हैं। जिसमें उतरे थे, वह मकान पन्द्रह लाख का था और बड़ा गृहस्थ करोड़पति। बीस-पच्चीस, तीस लाख रुपये के कपड़े की तो बड़ी दुकान भरी हुई, बड़ा व्यापारी। ऐसे बेचारा साधारण व्यक्ति। ऐसी कुछ बुद्धि ऐसी कि चतुर या ऐसा मस्तिष्कवाला (नहीं)। लड़का होशियार था, उसका पिता साधारण। परन्तु मैंने कहा यह सब होली है, बापू! यह तो दुःख के सब दिन बीतते हैं। आहाहा! इस सुख में जाते हैं, ऐसा नहीं।

यह **संसारजनित सुख के कारणभूत कर्म को छोड़कर...** आहाहा! अर्थात् पुण्य और पाप दोनों को छोड़कर... आहाहा! **मुक्ति का मूल...** मोक्ष का मूल **ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है,...** आहाहा! मोक्ष का मूल ऐसा जो चारित्र। आहाहा! देखा! मोक्ष का मूल चारित्र कहा। मोक्ष का मूल। **ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है,...** जिसे विकल्प भी नहीं। निर्विकल्प आनन्द में अन्दर तल्लीन हो गये हैं। जिन्हें संसार है या नहीं, यह खबर भी नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हो गये हैं। आहाहा! वह आत्मा **मलरहित चारित्र में स्थित है,...** आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव मैल है। आहाहा! जैसे नाक का गूँगा है, वैसे यह गूँगा का मेल है। यह शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह सब मैल है। आहाहा! यह संसारजनित कल्पित-माना हुआ सुख है। उसे छोड़कर... आहाहा!

मुक्ति का मूल ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है, वह आत्मा चारित्र का पुंज है। आहाहा! पाँचवें काल में भी सन्तों ने ऐसी बातें की। आहाहा! यह तो हजार वर्ष पहले की बात है। उस समय तो सच्चे मुनि थे। मुनि सच्चे थे। आहाहा! अभी तो मुनिपना कहना किसे, यह अभी सुनने को मिलता नहीं। वस्त्रवाले तो मुनि है ही नहीं, परन्तु वस्त्ररहित नग्न भी मुनि नहीं हैं। वे क्रियाकाण्ड में तल्लीन हैं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव। अशुभ छोड़कर बहुत तो शुभ में आवे। वह तो संसार है। शुभभाव में घोर संसार है। आहाहा! शुभभाव को इसमें घोर संसार कहा है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु से विरुद्ध भाव शुभ को जहाँ आगे.. आहाहा! दुःखरूप कहा है, वहाँ अशुभभाव की क्या बात करना? वह तो दुःख की जाति ही है। आहाहा!

दोनों के **मलरहित चारित्र में स्थित है, वह आत्मा चारित्र का पुंज है। समरसरूपी...** आहाहा! कैसा है मुनि? कैसा है चारित्रवन्त? आहाहा! **समरसरूपी सुधा के सागर को उछालने में पूर्ण चन्द्र समान...** जैसे पूर्णिमा का चन्द्र हो और समुद्र उछलता है। ज्वार आता है न ज्वार? पूर्णिमा के चन्द्रमा में समुद्र में ज्वार आवे, ऐसा नियम है। चन्द्र को और समुद्र को ऐसा सम्बन्ध है। चन्द्र जहाँ पूर्ण हो, वहाँ पूरा ज्वार आता है। आहाहा! इसी प्रकार **समरसरूपी सुधा के सागर को उछालने में पूर्ण चन्द्र समान...** यह चारित्रवन्त अन्तर में स्थित जम गया है। वह आनन्द को... आहाहा! सुधा अर्थात् अमृत का सागर। आचार्य को-मुनि को भाषा कम पड़ती है। उस अमृत के सागर को उछालने में पूर्ण चन्द्र समान है। जैसे पूर्ण चन्द्र उदित हो और समुद्र उछले, वैसे अन्दर आत्मा में स्थिर होने पर अतीन्द्रिय आनन्द उछलता है, अमृत उछलता है। आहाहा! यह चारित्र! ऐसा सुना भी नहीं था और सब बाहर की क्रिया-फिरिया को (चारित्र माना था)। आहाहा!

अमृत के सागर को उछालने में... आहाहा! शक्तिरूप से है, उसे प्रगट करने में **पूर्ण चन्द्र समान उस आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं कि ऐसे आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! धन्य अवतार! जिसने अमृत का सागर अन्दर से उछाला, अमृत का समुद्र भरा है। प्रभु तो अमृत का समुद्र / सागर है। बालक से लेकर आबाल-गोपाल सबको। आहाहा! आया है न अपने, नहीं? १७-१८वीं गाथा में। आबाल-गोपाल—

बालक से वृद्ध को सबको भगवान परमात्मा प्राप्त होवे। आहाहा! यह दोष न रहे। आहाहा! सब आठ कर्म का नाश करके सुखी होवे। ऐसी भावना भाते हैं। अपनी भावना है, वह दूसरे की भी भावना (भाता है)। कोई दुःखी हो, कोई विरोध करनेवाला भी विरोध करके दुःखी होवे, (ऐसा नहीं भाते)। प्रभु! तुम विरोध को मिटाकर सुखी होओ। आहाहा!

आनन्द की सुधा उछलती है, कहते हैं। देखा! **सुधा के सागर को उछालने में...** चारित्र। स्वरूप में रमणता, रागरहित स्थिरता। उस सुधा के सागर, अमृत के सागर को **उछालने में पूर्ण चन्द्र समान...** आहाहा! चारित्र उसे कहना, ऐसा सुना भी नहीं होगा। पूरी जिन्दगी ऐसी की ऐसी बाहर की क्रियाकाण्ड (किये), वस्त्र छोड़े और... आहाहा! यहाँ तो वस्त्रवाले को तो मुनि नहीं मानते। वस्त्रवाले हैं, उन्हें मुनि माने, वह तो निगोदगामी है परन्तु वस्त्र छोड़कर नग्न घूमे किन्तु उसे यदि ऐसा आत्मभान नहीं... आहाहा! उस अमृत के सागर को अन्दर से नहीं उछालते तथा राग और द्वेष की क्रिया में पड़े हैं, वे दुःखी हैं। आहाहा! प्रभु! उस आत्मा को दुःख होता है। उसे दुःख होता है। ऐसी किसी की भावना होवे कि वह दुःखी हो? आहाहा! भाषा तो कैसी!

अमृत के सागर को **उछालने में पूर्ण चन्द्र समान...** चारित्र है। चारित्र अपने लिये यह है और दूसरे के लिये भी यह है। आहाहा! चारित्र तो उसे कहते हैं कि जो आनन्द के सागर में तिरे। जैसे पशु हरी (घास को) चरता है, वैसे आत्मा के आनन्द को अन्दर चरता है, अनुभव करता है और आनन्द को उछालता है। जो आनन्द शक्ति में है, उसे पर्याय में-ज्वार में लाता है। जो समुद्र अन्दर भरा हुआ है, वह ज्वार में बाहर आता है। ज्वार आता है न? ऐसे अमृत का सागर नाथ! आहाहा! उसे उछालने में, ज्वार लाने में चारित्रवन्त समर्थ है। आहाहा! ऐसा चारित्र! यह तो एक स्त्री, पुत्र जहाँ छोड़ा और दुकान छोड़ी, वस्त्र छोड़े, वहाँ हो गये साधु। आहाहा! प्रभु! मार्ग अलग है, भाई! इस स्थिति में दुःख होगा, यह मार्ग की पद्धति नहीं है, यह मार्ग का प्रकार नहीं है, यह मार्ग का स्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा! मार्ग का यह स्वरूप है (कि) अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसमें बस जा, विश्राम ले। आहाहा!

जैसे थका हुआ मनुष्य घर में आकर फिर निश्चिन्तता से थकान उतारता है; उसी प्रकार पुण्य और पाप की-संसार की थकान उतारकर अन्तर के घर में जा, वहाँ विश्राम

कर, तेरी थकान उतर जाएगी। संसार के थकान का दु:ख निकल जाएगा। आहाहा! क्या आचार्य ने शब्द रखा है! मुनि ने-पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं।

सुधा के सागर को उछालने में पूर्ण चन्द्र समान उस आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि उस आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! अमृत का समुद्र भरा है, भगवान! उसमें शुभाशुभभावरूपी जहर का अंश नहीं है। वह जहर है, अमृत से विरुद्ध है। आहाहा! ऐसे अमृत के सागर को उछालने में जिसने स्वरूप में स्थिरता की है, वह चन्द्रमा के समान है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसी कथा! एकेन्द्रिय के जीव की दया पालना, अमुक यह करना, अमुक यह करना - परन्तु बापू! कौन पालन कर सकता है? पर की दया पालता कौन है? परपदार्थ को स्पर्श नहीं कर सकता, फिर पालता कौन है? परद्रव्य को छू नहीं सकता, स्पर्श नहीं कर सकता। स्पर्श नहीं कर सकता तो दया कौन पाले? शान्तिभाई! आहाहा! दया पालो... दया पालो... दया पालो... परन्तु किसकी दया करना? दया तो यह। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भरा है। उसे स्वरूप में स्थिरता द्वारा उछालना—बाहर लाना, इसका नाम आत्मदया है। इसका नाम अहिंसा है। आहाहा! राग की क्रिया, वह स्वरूप की हिंसा है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी हिंसा है। अरे रे! कैसे जँचे? कभी सुना न हो, निवृत्ति नहीं मिले। अन्तिम लाईन।

समरसरूपी सुधा के सागर को... ऐसा है न? समतारूपी अमृत का सागर, भगवान यह आत्मा। समतारूपी अमृत का सागर, आहाहा! समरसरूपी, वीतरागरूपी अमृत का सागर। वीतरागी अमृत का सागर भरा हुआ है। भगवान तो वीतरागी अमृत का सागर भरा हुआ है, उसे उछालने में... आहाहा! इस भरे हुए को बाहर में उछालने में, पर्याय में लाने में.. आहाहा! **पूर्ण चन्द्र समान...** है। स्वरूप में स्थिरतारूपी चारित्र... आहाहा! यह तो महा अमृत को उछालने में चन्द्र समान है। **उस आत्मा को...** ऐसे आत्मा को। ऐसे आत्मा को, मुनिराज स्वयं कहते हैं **मैं वन्दन करता हूँ।** उसे मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! स्वयं भी मुनि है। सच्चे मुनि हैं। अमृत का सागर उछाला है परन्तु जिसने उछाला है, उन्हें भी मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! वह मेरी बिरादरी का, वह मेरी जाति का है। आहाहा! कहो, ऐसे शब्द वहाँ कभी सुने थे। आहाहा!

चारित्र किसे कहना ? कि वीतरागी अमृत के सागर को उछालने में जो स्थिरता चन्द्र समान है, उसे चारित्र कहना। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा आया न ? **समरसरूपी सुधा के...** वीतरागस्वरूपी भगवान है। आत्मा तो वीतरागीस्वरूप है। वीतराग शक्तिस्वभाव जिसका वीतराग ही है। वह प्रगट करने को—उछालने में वह अन्तर की स्थिरतारूपी चारित्र, उसे प्रगट करने में वह साधन है, दूसरा कोई साधन नहीं है। आहाहा ! यह दया पालना, व्रत करना, अपवास करना, वह साधन नहीं है। आहाहा ! दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। आहाहा ! श्वेताम्बर में ऐसी वाणी निकले नहीं। उनके बत्तीस सूत्र, भगवती (सूत्र) सत्रह बार पढ़ा है। सोलह हजार श्लोक और एक लाख (श्लोकप्रमाण) की टीका। यह बात उसमें कहीं नहीं है। आहाहा ! यह शब्द तो देखो !

वीतरागी अमृतस्वरूप वह सागर, वीतरागी अमृत का सागर प्रभु, उसे पर्याय में उछालने में, लाने में, स्वरूप में स्थिरता / वीतराग चारित्र (होने में) वह चन्द्र समान है। आहाहा ! शब्द तो शब्द हैं। गजब किया है। वहाँ चिह्न किया है। तब पढ़ते हुए। यह ऊपर इसके लिए चिह्न किया है। कितना समाहित किया है इसमें ? समरसरूपी। समरस अर्थात् वीतरागरूपी। आहाहा ! वीतरागी अमृत का सागर, उसे बाहर लाने में। आहाहा ! शक्ति और स्वभाव में से पर्याय में लाने में पूर्ण चन्द्र समान, पूर्ण चन्द्र समान। पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र हो और जैसे समुद्र उछलता है। आहाहा ! एक लाईन में चाहे जितना कहो परन्तु कहीं पार पड़े ऐसा नहीं है। ऐसी एक लाईन है। आहाहा ! यह तो मुनिराज का श्लोक है। यह मूल पाठ नहीं है। यह तो मुनिराज का स्वयं का है। ओहोहो ! १५२ (गाथा) पूरी हुई।

गाथा-१५३

वयणमयं पडिकमणं वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं तं सव्वं जाण सज्झायं।।१५३।।

वचनमयं प्रतिक्रमणं वचनमयं प्रत्याख्यानं नियमश्च।
आलोचनं वचनमयं तत्सर्वं जानीहि स्वाध्यायम्।।१५३।।

सकलवाग्विषयव्यापारनिरासोऽयम्। पाक्षिकादिप्रतिक्रमणक्रियाकारणं निर्यापकाचार्य-मुखोद्गतं समस्तपापक्षयहेतुभूतं द्रव्यश्रुतमखिलं वाग्वर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यात्मकत्वान्न ग्राह्यं भवति, प्रत्याख्याननियमालोचनाश्च। पौद्गलिकवचनमयत्वात्तत्सर्वं स्वाध्यायमिति रे शिष्यं त्वं जानीहि इति।

रे वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक नियम, प्रत्याख्यान ये।
आलोचना वाचिक सभी को जान तू स्वाध्याय रे॥१५३॥

अन्वयार्थ : [वचनमयं प्रतिक्रमणं] वचनमय प्रतिक्रमण, [वचनमयं प्रत्याख्यानं] वचनमय प्रत्याख्यान, [नियमः] (वचनमय) नियम [च] और [वचनमयम् आलोचनं] वचनमय आलोचना—[तत् सर्वं] यह सब [स्वाध्यायम्] (प्रशस्त अध्यवसायरूप) स्वाध्याय [जानीहि] जान।

टीका : यह, समस्त वचनसम्बन्धी व्यापार का निरास (निराकरण, खण्डन) है।

पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणक्रिया का कारण, ऐसा जो निर्यापक आचार्य के मुख से निकला हुआ, समस्त पापक्षय के हेतुभूत, सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत, वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है। प्रत्याख्यान, नियम और आलोचना भी (पुद्गलद्रव्यात्मक होने से) ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं। वह सब पौद्गलिक वचनमय होने से स्वाध्याय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।

गाथा - १५३ पर प्रवचन

गाथा १५३। १५२ हुई।

वयणमयं पडिकमणं वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं तं सव्वं जाण सज्झायं।।१५३।।

रे वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक नियम, प्रत्याख्यान ये।
आलोचना वाचिक सभी को जान तू स्वाध्याय रे॥१५३॥

आहाहा! व्यवहार स्वाध्याय शुभभाव है। आहाहा! उसमें धर्म नहीं है। उसमें प्रभु का अमृत सागर उछाले, ऐसी ताकत उसमें नहीं है। ऐसी सज्झाय में... आहाहा! **यह, समस्त वचनसम्बन्धी व्यापार का निरास (निराकरण, खण्डन) है।** है न? आहाहा!

रे वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक नियम, प्रत्याख्यान ये।
आलोचना वाचिक सभी को जान तू स्वाध्याय रे॥१५३॥

स्वाध्याय का अर्थ शुभभाव। स्व-अध्याय नहीं। आहाहा! **यह, समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार का निरास (निराकरण, खण्डन) है। पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणक्रिया का कारण ऐसा जो निर्यापक आचार्य के मुख से निकला हुआ,...** बनाया हुआ। आहाहा! **समस्त पापक्षय के हेतुभूत,...** शुभभाव है न? शुभभाव से पाप का क्षय का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! यह स्वाध्याय शुभभाव का-पाप का-अशुभ का क्षय का कारण है। वह भी यहाँ तो क्षय का हेतुभूत कहा है। आहाहा! निश्चयसहित है न? निश्चय के आनन्द के अनुभव की भूमिका में जो वचनमय ऐसी दशा हो, वह पाप के क्षयभूत है। अकेले सम्यग्दर्शन बिना, अकेले आत्मा के अनुभव बिना की बात नहीं है। आहाहा! आत्मा की अनुभूति, अनुभव, आनन्द के स्वादसहित ऐसा जो शुभभाव होता है... आहाहा! पाप के क्षय के हेतुभूत उसे कहा है। पुण्य और पाप दोनों का क्षय नहीं। आहाहा! है?

पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणक्रिया का कारण ऐसा जो निर्यापक आचार्य... सन्त, सच्चे मुनि, उन्होंने **आचार्य के मुख से निकला हुआ,...** बनाया हुआ, वह **समस्त पापक्षय के हेतुभूत,...** है? वह प्रतिक्रमण शब्दों से है, उसमें विकल्प है। उस शुभविकल्प से पाप का क्षय है। निश्चय हो उसे। जिसे निश्चय नहीं, उसे तो पाप का क्षय (हेतु नहीं है), वह

तो पापबन्धन है। आहाहा! जिसे आत्मा का भान और अनुभव है, उसे यह पापक्षय का हेतुभूत निमित्त है। आहाहा!

सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत वह वचनवर्गणायोग्य... आहाहा! कहते हुए जरा भी दुनिया की दरकार नहीं है कि यह मैं जो बाहर प्रसिद्ध करता हूँ तो मुनिरूप से कोई निन्दा करेगा कि यह क्या ऐसी लगा रखी है? बापू! प्रभु का मार्ग यह है, भाई! आहाहा! आत्मा की दृष्टि के अनुभवसहित ऐसा जो भाव है, वह पाप के क्षयभूत है। पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! **सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत...** आहाहा! सब द्रव्यश्रुत। आहाहा! ग्यारह अंग और समस्त द्रव्यश्रुत भरा हो। भले कहते हैं हो। **द्रव्यश्रुत वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गल-द्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है।** वह द्रव्यश्रुत ग्राह्य नहीं है। आहाहा! अन्दर जो भाव हो, वह शुभ है और यह वचनवर्गणा योग्य जो है, वह तो ग्राह्य है ही नहीं। आहाहा! वह तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय है। द्रव्यश्रुत तो पुद्गल की पर्याय है। आहाहा!

द्रव्यश्रुत वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि शास्त्र का अभ्यास करना, आगम अभ्यास करना। यह बिल्कुल ठोठ विद्यार्थी हो, उसे कहा है। परन्तु जिसे कहते हैं कि आत्मज्ञान हुआ है, उसे ऐसी वचनवर्गणा द्रव्यश्रुत... आहाहा! ग्राह्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। **द्रव्यश्रुत वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है।** आहाहा! पहले जो पाप के हेतुभूत कहा था, वह तो भाव, वह तो शुभभाव; और यह द्रव्यश्रुत है, वह तो ग्राह्य ही नहीं। आहाहा! क्या कहा? पहले द्रव्यश्रुत जब ग्राह्य नहीं कहा, वह कहीं पाप के क्षय हेतुभूत नहीं है। आहाहा! अन्दर में समकित सहित, आत्मज्ञानसहित शुभभाव हुआ, उसे शुभभाव पाप के क्षयभूत है और वचनवर्गणायोग्य द्रव्यश्रुत, वह तो ग्राह्य नहीं। आहाहा! तीन प्रकार हुए। द्रव्यश्रुत की वचनावर्गणा शब्द है, वह ग्राह्य नहीं; उसमें जरा भाव शुभ हो, वह पाप के क्षयभूत है और वह किसे? कि जिसे पाप और शब्दवर्गणा से भिन्न आत्मा का अनुभव है उसे। आहाहा! ऐसी बात! ५०-५०, ६०-६० वर्ष निकाले हों। उसमें से वापस नया... आहाहा! बात नयी है, बापू! सुनने में आयी नहीं, सुनने में मिलती नहीं।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि **सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गल-द्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है। प्रत्याख्यान, नियम और आलोचना भी (पुद्गलद्रव्यात्मक**

होने से)... आहाहा! वाणी द्वारा जितना प्रतिक्रमण और आलोचना बोली जाए, वह ग्राह्य नहीं है। आहाहा! सिर घूम जाए ऐसा है। है? **प्रत्याख्यान, नियम और आलोचना भी...** द्रव्यश्रुत तो कहा था। वह भी **(पुद्गलद्रव्यात्मक होने से) ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं। वह सब पौद्गलिक वचनमय होने से स्वाध्याय है...** शुभभाव है। **ऐसा हे शिष्य! तू जान।** हे शिष्य! ऐसा जान। उसे तू धर्म जान और उससे धर्म होगा, उससे संवर और निर्जरा हो जाए, ऐसा कुछ है नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)